R.N.I.- UP-HIN/2001/3996
ISSN- 2581-6128

स्थापन दिवस के 24वें वर्ष में प्रवेश

संयम • संस्कार • सन्तुलन

शहर समता

शोध पत्र

(हिंदी साप्ताहिक)

'कर्मक्षेत्र रणभूमि यही है, मानव हो तुम कर्म करो।
कर्म से कभी विमुख न रहना, मन में यह संकल्प करो।'-
उमेश श्रीवास्तव

संस्थापकः स्व0 कन्हैया लाल, स्व0 श्रीमती साधना श्रीवास्तव
सम्पादकः उमेश चन्द्र श्रीवास्तव

विमर्श अंक

वर्ष 24 | अंक 5 | रविवार, इलाहाबाद, 23 जून 2024 | पृष्ठ 6 | विशेषांक मूल्यः 3 रू0

संपादकीय

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल

रामचन्द्र की दृष्टि से, साहित्य हुआ परिनिष्ठ,
वरना कहाँ हम ढूढते, साहित्य का परिशिष्ट ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साहित्यिक योगदान अदम्य है। खोजी दृष्टि के परिचायक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का पूरा जीवन साहित्यिक था। वह सदैव नए-नए तथ्यों की तलाश में रहे। हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से और वैचारिक पृष्ठभूमि पर उनका चिन्तन अद्वितीय रहा। उन्होंने तमाम विषयों पर खोज परक निबंध भी लिखे। चिंतामणि उनके निबंधो का विलक्षण संकलन है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक निबंध 1912 से 1919 ई.तक 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित हुये थे। इसीलिए आचार्य शुक्ल जी के हिन्दी-निबंध साहित्य के क्षेत्र में 'भय', 'क्रोध', 'ईष्या', 'घृणा', 'उत्साह' 'श्रद्धा-भक्ति, लज्जा और ग्लानि तथा लोभ और प्रीति आदि का अपना महत्त्व हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर केन्द्रित 'शहर समता' के इस विशेषांक में सीमा के अनुसार उनके एक कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' उनके

सार समिति निबंध कविता क्या है?' तथा उनकी कुछ कविताएँ संकलित है।कविता क्या है? निबंध, साहित्य, विशेषतः कविता के संबंध में आचार्य शुक्ल की बुनियादी मान्यताएं इस निबंध में प्रस्तुत हुई हैं, जो कई बार संशोधित और संवर्द्दित करके लिखा गया । इसका आरंम्भिक रूप 1909 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ। इसी से मिलते-जुलते विषय पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेख 'कवि और कविता ' के संबंध में आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है, कवि और कविता' कैसा गम्भीर विषय है, कहने की आवश्यकता नहीं। पर इस विषय की बहुत मोटी -मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर कही गयी है----।' तब 'कविता क्या है?' का लेखक अपने विषय की गंम्भीरता के प्रति अत्यंत सजग है और इसीलिए इस निबंध का उसने कई बार परिष्कार किया।' 'सरस्वती' में प्रकाशित निबंध के मुख खण्ड है 'कार्य में प्रवृत्ति,मनोरंजन और स्वभाव -संशोधित , सशोधन; कविता की आवश्यकता; सृष्टि और सौदर्य,कविता की भाषा, श्रतिसुखदाता तथा अलंकार।' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का इतिहास 'डॉ.राम स्वरूप चतुर्वेदी की पुस्तक पृष्ठ संख्या 156-157 से) इसके अतिरिक्त आचार्य शुक्ल पर डॉ.राजकुमार शर्मा का एक लेख जो विभिन्न विद्वानों के मतानुसार उन पर दिये गये वक्तव्य पर आधारित है। जिसमें हलके-फुलके ढंग से बहुत बड़ी -बड़ी बातें कही गयी है जो साहित्य के विद्यार्थियों के लिए रोचक और ज्ञानवर्धक भी है। 'शहर समता' के इस 'विमर्श अंक' ने अपनी निष्ठा और परंम्परा के अनुसार पिछली बार 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' पर कुछ विशेष सामग्री देने का प्रयास किया था और इस बार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर कुछ विशेष साम्रगी दी जा रही है , आशा है आप सबको यह अंक भी अच्छा लगेगा। व्यावसायिक युग के इस माहौल में साहित्य पर ठोस और ज्ञानवर्धक सामग्री देना काफी जोखिम भरा काम है। क्योंकि आज के माहौल में साहित्यिक पत्रिका भी अधिकतर बिकाऊ माल ही परोसती है। ताकि उनकी पत्रिकाओं को पाठक रोचकता के साथ पढ़े। पढाने के इस माहौल में गढ़ने वाले भी वही लिख रहे हैं -जो बिकाऊ हो। हर क्षेत्र की तरह साहित्य में भी यह अवसान चिन्ताजनक है, जिसे हम सब साहित्य अनुरागियों को मिलकर तोड़ना होगा। वरना समय के महाकाल में साहित्य सिर्फ गाल बजाने का ही कार्य कर पायेगा। आशा है सभी साहित्यकार इस ओर जरूर अपना ध्यान आकृष्ट करेंगे। इसी विनीत भाव की प्रत्याशा में। यह 'विमर्श अंक' कैसा लगा अवश्य प्रतिक्रिया दें। अंत में-

साहित्य का अनुराग प्यार ही भाता है,
दुनिया में साहित्य समझ ही आता है।
मत चूको तुम प्यार-प्यार के वाशिंदे,
साहित्य का ही भाव सभी को भाता है।

-उमेश श्रीवास्तव

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल का आत्मनिवेदन

जीवन परिचय

रामचन्द्र शुक्ल जी का जन्म बस्ती ज़िले के अगोना नामक गाँव में सन् 1884 ई. में हुआ था। सन् 1888 ई. में वे अपने पिता के साथ राठ हमीरपुर गये तथा वहीं पर विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। सन् 1892 ई. में उनके पिता की नियुक्ति मिर्ज़ापुर में सदर क़ानूनगो के रूप में हो गई और वे पिता के साथ मिर्ज़ापुर आ गये।

शिक्षा

रामचन्द्र शुक्ल जी के पिता ने शिक्षा के क्षेत्र में इन पर उर्दू और अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए ज़ोर दिया तथा पिता की आँख बचाकर वे हिन्दी भी पढ़ते रहे। सन् 1901 ई. में उन्होंने मिशन स्कूल से स्कूल फ़ाइनल की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा प्रयाग के कायस्थ पाठशाला इण्टर कॉलेज में एफ़.ए. (बारहवीं) पढ़ने के लिए आये। गणित में कमज़ोर होने के कारण उन्होंने शीघ्र ही उसे छोड़कर 'प्लीडरशिप' की परीक्षा उत्तीर्ण करनी चाही, उसमें भी वे असफल रहे। परन्तु इन परीक्षाओं की सफलता या असफलता से अलग वे बराबर साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास आदि के अध्ययन में लगे रहे। मिर्ज़ापुर के पण्डित केदारनाथ पाठक, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के सम्पर्क में आकर उनके अध्ययन-अध्यवसाय को और बल मिला। यहीं पर उन्होंने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेज़ी के साहित्य का गहन अनुशीलन प्रारम्भ कर दिया था, जिसका उपयोग वे आगे चल कर अपने लेखन में जमकर कर सके।

कार्यक्षेत्र

मिर्ज़ापुर के तत्कालीन कलक्टर ने रामचन्द्र शुक्ल को एक कार्यालय में नौकरी भी दे दी थी, पर हैड क्लर्क से उनके स्वाभिमानी स्वभाव की पटी नहीं। उसे उन्होंने छोड़ दिया। फिर कुछ दिनों तक रामचन्द्र शुक्ल मिर्ज़ापुर के मिशन स्कूल में चित्रकला के अध्यापक रहे। सन् 1909 से 1910 ई. के लगभग वे 'हिन्दी शब्द सागर' के सम्पादन में वैतनिक सहायक के रूप में काशी आ गये, यहीं पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विभिन्न कार्यों को करते हुए उनकी प्रतिभा चमकी। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का सम्पादन भी उन्होंने कुछ दिनों तक किया था। कोश का कार्य समाप्त हो जाने के बाद शुक्ल जी की नियुक्ति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक के रूप में हो गई। वहाँ से एक महीने के लिए वे अलवर राज्य में भी नौकरी के लिये गए, पर रुचि का काम न होने से पुनः विश्वविद्यालय लौट आए। सन् 1937 ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए एवं इस पद पर रहते हुए ही सन् 1941 ई. में उनकी श्वास के दौरे में ह्रदय गति बन्द हो जाने से मृत्यु हो गई।

रचनाएँ

अनुवाद

शुक्ल जी का साहित्यिक व्यक्तित्व विविध पक्षों वाला है। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में लेख लिखे हैं और फिर गम्भीर निबन्धों का प्रणयन किया है, जो चिन्तामणि (दो भाग) में संकलित है। उन्होंने ब्रजभाषा और खड़ीबोली में फुटकर कविताएँ लिखीं तथा एडविन आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ़ एशिया' का ब्रजभाषा में 'बुद्धचरित' के नाम से पद्यानुवाद किया। शुक्ल जी ने मनोविज्ञान, इतिहास, संस्कृति, शिक्षा एवं व्यवहार सम्बन्धी लेखों एवं पत्रिकाओं के भी अनुवाद किये हैं तथा जोसेफ़ एडिसन के 'प्लेजर्स ऑफ़ इमेजिनेशन' का 'कल्पना का आनन्द' नाम से एवं राखाल दास वन्द्योपाध्याय के 'शशांक' उपन्यास का भी हिन्दी में रोचक अनुवाद किया।

रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' तथा 'बुद्धचरित' की भूमिका में क्रमशः अवधी तथा ब्रजभाषा का भाषा-शास्त्रीय विवेचन करते हुए उनका स्वरूप भी स्पष्ट किया है। अनुवादक रूप में उन्होंने 'शशांक' जैसे श्रेष्ठ उपन्यास का अनुवाद किया है। अनुवाद के रूप में उनकी शक्ति या निर्बलता यह थी कि उन्होंने अपनी प्रतिभा या अध्ययन के बल पर उनमें अपेक्षित परिवर्तन कर लिये हैं। 'शशांक' मूल बंगला में दुःखान्त है, पर उन्होंने उसे सुखान्त बना दिया है। अनुवादक की इस प्रवृत्ति को आदर्श भले ही न माना जाये, पर उसके व्यक्तित्व की शक्ति एवं जीवन का प्रतीक अवश्य माना जा सकता है।

समीक्षाएँ

उन्होंने सैद्धान्तिक समीक्षा पर लिखा, जो उनकी मृत्यु के पश्चात् संकलित होकर 'रस मीमांसा' नाम की पुस्तक में विद्यमान है तथा तुलसी, जायसी की ग्रन्थावलियों एवं 'भ्रमर गीतसार' की भूमिका में लम्बी व्यावहारिक समीक्षाएँ लिखीं, जिनमें से दो 'गोस्वामी तुल सीदास' तथा 'महाकवि सूरदास' अलग से पुस्तक रूप में भी उपलब्ध हैं।

हिन्दी साहित्य का इतिहास

शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा, जिसमें काव्य प्रवृत्तियों एवं कवियों का परिचय भी है और उनकी समीक्षा भी लिखी है। दर्शन के क्षेत्र में भी उनकी 'विश्व प्रपंच' पुस्तक उपलब्ध है। पुस्तक यों तो 'रिडल ऑफ़ दि युनिवर्स' का अनुवाद है, पर उसकी लम्बी भूमिका शुक्ल जी के द्वारा किया गया मौलिक प्रयास है। इस प्रकार शुक्ल जी ने साहित्य में विचारों के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस सम्पूर्ण लेखन में भी उनका सबसे महत्वपूर्ण एवं कालजयी रूप समीक्षक, निबन्ध लेखक एवं साहित्यिक इतिहासकार के रूप में प्रकट हुआ है।

समीक्षक

नलिनविलोचन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'साहित्य का इतिहास दर्शन' में कहा है कि शुक्ल जी से बड़ा समीक्षक सम्भवतः उस युग में किसी भी भारतीय भाषा में नहीं था। यह बात विचार करने पर सत्य प्रतीत होती है, बल्कि ऐसा लगता है कि समीक्षक के रूप में शुक्ल जी अब भी अपराजेय हैं। अपनी समस्त सीमाओं के बावजूद उनका पैनापन, उनकी गम्भीरता एवं उनके बहुत से निष्कर्ष एवं स्थापनाएँ किसी भी भाषा के समीक्षा साहित्य के लिए गर्व का विषय बन सकती है।

अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में स्वयं रामचन्द्र शुक्ल जी ने कहा है, 'इस तृतीय उत्थान (सन 1918 ई. से) में समालोचना का आदर्श भी बदला। गुण-दोष के कथन के आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और अन्तःप्रवृत्ति की छानबीन की ओर भी ध्यान दिया गया'[1] कहना न होगा कि कवियों की विशेषताओं एवं उनकी अन्तःप्रवृत्ति की छानबीन की ओर ध्यान, सबसे पहले शुक्ल जी ने दिया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य को अपेक्षित धरातल देने में सबसे बड़ा हाथ उनका ही रहा है। समीक्षक के रूप में शुक्ल जी पर विचार करते ही एक तथ्य सामने आ जाता है, कि उन्होंने अपनी पद्धति को युगानुकूल नवीन बनाया था। रस और अलंकार आदि का प्रयोग अपने समीक्षात्मक

शेष पृष्ठ 2 पर...

पृष्ठ 1 का शेष...

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल का आत्मनिवेदन...

प्रयासों में शुक्ल जी से पहले के लोगों ने भी किया था, पर उन्होंने इस सिद्धान्तों की, मनोविज्ञान के आलोक में एवं पाश्चात्य शैली पर कुछ ऐसी अभिनव व्याख्या दी कि ये सिद्धान्त समीक्षा से बहिष्कृत न होकर पूरी तरह स्वीकार कर लिये गये। इस प्रकार जहाँ उन्होंने एक ओर अपनी आलोचनाओं का ढाँचा भारतीय रहने दिया है, वहीं पर उसका बाह्य रूप एवं रचना-विधान पश्चिम से लिया है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि यह निर्णय करना कठिन है कि उनकी समीक्षा में देशी और विदेशी तत्वों का मिश्रण किस अनुपात में हुआ है। इस सम्बन्ध में उन्होंने तुलसी, सूर या जायसी जैसे श्रेष्ठ कवियों की समीक्षाओं में ही नहीं, अपने इतिहास में छोटे कवियों पर भी, उतनी ही सफल ता से किया है।

मानदण्ड-निर्धारण

रामचन्द्र शुक्ल के समीक्षक-व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता या महानता है कि उन्होंने मानदण्ड-निर्धारण और उनका प्रयोग दोनों कार्य एक साथ किए हैं तथा इस दोहरे कार्य में कथनी और करनी का अन्तराल कहीं भी उपलब्ध नहीं होता, बल्कि यों कहें कि अपने मनोविकारों वाले निबन्धों में जीवन, साहित्य और भावों के मध्य जो सम्बन्ध देखा था, उसी के आधार पर उन्होंने अपनी समीक्षा के मानदण्ड निर्धारित किये एवं इन सिद्धान्तों का व्यावहारिक उपयोग उन्होंने फिर किया। सिद्धान्त एवं व्यवहार के मध्य ऐसी संगीत श्रेष्ठतम आलोचकों में ही प्राप्त होती है।

महत्वपूर्ण विशेषता

उनकी एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता समसामयिक काव्य चिन्तन सम्बन्धी जागरूकता है। उन्होंने जिन साहित्य-मीमांसकों एवं रचनाकारों को उद्धृत किया है, उनमें से अधिकांश को आज भी हिन्दी के तमाम आचार्य और स्वनाम धन्य आलोचक नहीं पढ़ते। सम्भवतः रामचन्द्र शुक्ल उन प्रारम्भिक व्यक्तियों में होंगे, जिन्होंने इलियट और कमिंग्ज जैसे रचनाकारों का भारतवर्ष में पहली बार उल्लेख किया है। 1935 ई. में इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य परिषद् के अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण 'काव्य में अभिव्यंजनवाद'ड2.में इस जागरूकता के सम्बन्ध में सबसे अधिक दर्शन होते हैं। उन्होंने जे. एस. फ़्लिण्ट की चर्चा की है तथा हेराल्ड मुनरो की तारीफ़ की है तथा कैलीफ़ोर्निया युनीवर्सिटी के अध्यापकों द्वारा लिखित सद्यः प्रकाशित आलोचनात्मक निबन्धों के संग्रह के उद्धरण दिये हैं।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि पहली बार हिन्दी में शुक्ल जी ने सामाजिक मनोवैज्ञानिक आधार पर किसी कवि की विवेचना करके आलोचना को एक व्यक्तित्व प्रदान किया, उसे जड़ से गतिशील किया। एक ओर उन्होंने सामाजिक सन्दर्भ को महत्व प्रदान किया एवं दूसरी ओर रचनाकार की व्यक्तिगत मनःस्थिति का हवाला दिया। शुक्ल जी के व्यक्तित्व का एक गुण यह भी है कि वे श्रुति नहीं, मुनि-मार्ग के अनुयायी थे। किसी भी मत, विचार या सिद्धान्त को उन्होंने बिना अपने विवेक की कसौटी पर कसे स्वीकार नहीं किया। यदि उनकी बुद्धि को वह ठीक नहीं जँचा, तो उसके प्रत्याख्यान में तनिक भी मोह नहीं दिखाया। इसी विश्वास के कारण वे क्रोचे, रवीन्द्र, कुन्तक, ब्लेक या स्पिन्गार्न की तीखी समीक्षा कर सके थे।

आलोचना के क्षेत्र में उन्होंने सदैव लोक-संग्रह की भूमिका पर काव्य को परखना चाहा तथा लोकसंग्रह सम्बन्धी धारणा में उनकी मध्यवर्गीय तथा कुछ मध्ययुगीन नैतिकता एवं स्थूल आदर्शवाद का भी मिश्रण था। इस कारण उनकी आलोचना यत्र-तत्र स्खलित भी हुई है। शुक्ल जी ने अपने समीक्षादर्श में 'एक की अनुभूति को दूसरे तक पहुँचाया' काव्य का लक्ष्य माना है तथा इस प्रेषण के द्वारा मनुष्य की सजीवता के प्रमाण मनोविकारों को परिष्कृत करके उनके उपयुक्त आलम्बन लाने में उसकी सार्थकता और सिद्धि देखी है। कवि की अनुभूति को सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त समझने के कारण उन्होंने कविकर्म के लिए यह महत्वपूर्ण माना कि 'वह प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को ढालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे'। इस कसौटी की ही अगली परिणति है कि ऐसी भावदशाओं के लिए अधिक अवकाश होने के कारण उन्होंने महाकाव्य को खण्ड-काव्य या मुक्तक-काव्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया। कुछ इसी कारण 'रोमाण्टिक', 'रहस्यात्मक' या 'लिरिकल' संवेदना वाले काव्य को वे उतनी सहानुभूति नहीं दे सके हैं।

साधारणीकरण

शुक्ल जी असाधारण वस्तु योजना अथवा ज्ञानातीत दशाओं के चित्रण के पक्षपाती भी इसीलिए नहीं थे कि उनसे प्रेषणीयता में बाधा पहुँचती है। इस सिद्धान्त के स्वीकरण के फलस्वरूप साधारणीकरण के सम्बन्ध में कुछ नयी व्याख्या देते हुए उन्होंने 'आलम्बनत्व धर्म का साधारणीकरण' माना। यह उनके स्वतंत्र काव्य-चिन्तन तथा अपने अध्ययन (विशेष रूप से तुलसी के अध्ययन) के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष का परिचायक भी है। अपनी क्लासिकल रस दृष्टि के कारण ही उन्होंने काव्य में कल्पना को अधिक महत्व नहीं दिया। अनुभूति प्रसूत भावुकता उन्हें स्वीकार्य थी, कल्पना प्रसूत नहीं। इस धारणा के कारण ही वे छायावाद जैसे काव्यान्दोल नों को उचित मूल्य नहीं दे सके। इसी कारण शुद्ध चमत्कार एवं अलंकार वैचित्र्य को भी उन्होंने निम्न कोटि प्रदान की। अलंकार को उन्होंने वर्णन प्रणाल ी मात्र माना। उनके अनुसार अलंकार का काम 'वस्तु निर्देश' नहीं है। इसी प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने लाक्षणिकता, औपचारिकता आदि को अलंकार से भिन्न शैलीतत्व के अंतर्गत माना है। काव्य शैली के क्षेत्र में उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना 'बिम्ब ग्रहण' की श्रेष्ठ मानने सम्बन्धी है, वैसे ही जैसे काव्य वस्तु के क्षेत्र में प्रकृति चित्रणसम्बन्धी विशेष आग्रह उनकी अपनी देन है।

भावयोग

शुक्ल ने काव्य को कर्मयोग एवं ज्ञानयोग के समकक्ष रखते हुए 'भावयोग' कहा, जो मनुष्य के हृदय को मुक्तावस्था में पहुँचाता है। काव्य को 'मनोरंजन' के हल्के-फुल्के उद्देश्य से हटाकर इस गम्भीर दायित्व को सौंपने में उनकी मौलिक एवं आचार्य दृष्टि द्रष्टव्य है। वे 'कविता को शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध' स्थापित करने वाला साधन मानते हैं, वस्तुतः काव्य को शक्ति के शील-विकास का महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठतम साधन उन्होंने माना।

सर्वांगीण विचार

नवीन साहित्य रूपों एवं चरित्रविधान की नयी परिपाटियों के कारण उन्होंने अपने रस-सिद्धान्त में केवल साधारणीकरण का ही नये सिरे से विवेचन नहीं किया, साथ ही 'रसात्मक बोध के विविध रूपों' की चर्चा करते हुए अपेक्षाकृत हीनतर रस-दशाओं या 'शील-वैचित्र्य' बोध का विचार किया है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी उन्होंने 'सिद्धावस्था' और 'साधनावस्था' की दृष्टि से विभाजन किया है। काव्य के अतिरिक्त उन्होंने अपने साहित्य में निबन्ध, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि साहित्यरूपों के स्वरूप पर भी संक्षिप्त, पर महत्वपूर्ण सर्वांगीण विचार प्रकट किये हैं।

समीक्षा-दृष्टि की सम्भावनाएँ

शुक्ल जी की समीक्षा का मूलस्वर यद्यपि व्याख्यात्मक है, पर आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने आकलनसम्बन्धी निर्णय लेने में साहस की कमी नहीं दिखाई है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण उनके इतिहास का आधुनिक काल से सम्बन्धित अंश है। यह अवश्य है कि इन निर्णयों या व्याख्याओं में उनके वैयक्तिक एवं वर्गगत आग्रह तथा उस युग तक की इतिहास दृष्टि की सीमाएँ थीं। वस्तुतः शुक्ल जी समीक्षा के प्रथम उठान के चरम विकास थे और आगे जिन लोगों ने उनका अनुगमन किया, वे वहीं महत्वपूर्ण हुए। शुक्लजी की समीक्षा-दृष्टि की सम्भावनाएँ बहुत विकासशील नहीं थीं।

साहित्यिक इतिहास लेखक

रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के प्रथम साहित्यिक इतिहास लेखक हैं, जिन्होंने मात्र कवि-वृत्त-संग्रह से आगे बढ़कर, 'शिक्षित जनता की जिन-जिन प्रवृत्तियों के अनुसार हमारे साहित्य के स्वरूप में जो-जो परिवर्तन होते आये हैं, जिन-जिन प्रभावों की प्रेरणा से काव्यधारा की भिन्न-भिन्न शाखाएँ फूटती रही हैं, उन सबके सम्यक निरूपण तथा उनकी दृष्टि से किये हुए सुसंगठित काल विभाग' की ओर ध्यान दिया। इस प्रकार उन्होंने साहित्य को शिक्षित जनता के साथ सम्बद्ध किया और उनका इतिहास केवल कवि-जीवनी या 'ढीले सूत्र में गुँथी आलोचनाओं' से आगे बढ़कर सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से संकलित हो उठा। वह कवि मात्र व्यक्ति न रहकर, परिस्थितियों के साथ आबद्ध होकर जाति के कार्य-कलाप को भी सूचित करने लगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने सामान्य प्रवृत्तियों के आधार पर कालविभाजन और उन युगों का नामकरण किया। इस प्रवृत्ति-साम्य एवं युग के अनुसार कवियों को समुदायों में रखकर उन्होंने 'सामूहिक प्रभाव की ओर' ध्यान आकर्षित किया। वस्तुतः उनका समीक्षक रूप यहाँ पर भी उभर आया है, और उनकी रसिक दृष्टि कवियों के काव्य सामर्थ्य के उद्घाटन में अधिक प्रवृत्त हुई हैं, तथ्यों की खोजबीन की ओर कम। यों साहित्यिक प्रवाह के उत्थान-पतन का निर्धारण उन्होंने अपनी लोक-संग्रह वाली कसौटी पर करना चाहा है, पर उनकी इतिहास दृष्टि निर्मल नहीं थी। यह उस समय तक की प्रबुद्ध वर्ग की इतिहास सम्बन्धी चेतना की सीमा भी थी। शीघ्र ही युग और कवियों के कार्य-कारण सम्बन्ध की असंगतियाँ सामने आने लगीं। जैसे कि भक्तिकाल के उदभवसम्बन्धी उनकी धारणा बहुत शीघ्र अयथार्थ सिद्ध हुई। वस्तुतः साहित्य को शिक्षित जन नहीं, सामान्य जन-चेतना के साथ सम्बद्ध करने की आवश्यकता थी। उनका औसतवाद का सिद्धान्त भी अवैज्ञानिक है। इस अवैज्ञानिक सिद्धान्त के कारण ही उन्हें कवियों का एक फूटकल खाता भी खोलना पड़ा था। यदि वे युगों के विविध अन्तर्विरोधों को प्रभावित कर सके होते तो ऐसी असंगतियाँ न आतीं।

निबन्धकार

रामचन्द्र शुक्ल का तीसरा महत्वपूर्ण व्यक्तित्व निबन्धकार का है। उनके निबन्धों के सम्बन्ध में बहुधा यह प्रश्न उठाया गया है कि वे विषयप्रधान निबन्धकार हैं या व्यक्तिप्रधान। वस्तुतः उनके निबन्ध आत्मव्यंजक या भावात्मक तो किसी प्रकार भी नहीं कहे जा सकते हाँ इतना अवश्य है कि बीच-बीच में आत्मपरक अंश आ गये हैं। पर ऐसे अंश इतने कम हैं कि उनको प्रमाण नहीं माना जा सकता। उनके निबन्ध अत्यन्त गहरे रूप में बौद्धिक एवं विषयनिष्ठ हैं। उन्हें हम ललित निबन्ध की कोटि में नहीं रख सकते। पर इन निबन्धों में जो गम्भीरता, विवेचन में जो पाण्डित्य एवं तार्किकता तथा शैली में जो कसाव मिलता है, वह इन्हें अभूतपूर्व दीप्ति दे देता है। वास्तव में निबन्धों के क्षेत्र में शुक्ल जी की परम्परा हिन्दी में बराबर चल ती जा रही है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि उनके निबन्धों के आलोकपुंज के समक्ष कुछ दिनों के लिए ललित भावात्मक निबन्धों का प्रणयन एकदम विरल हो गया। उनके महत्वपूर्ण निबन्धों को मनोविकार सम्बन्धी, सैद्धान्तिक समीक्षा सम्बन्धी एवं व्यावहारिक समीक्षा सम्बन्धी तीन भागों में बाँटा जा सकता है। यद्यपि इनमें आन्तरिक सम्बन्ध सूत्र बना रहता है। इनमें भी प्रथम प्रकार के निबन्ध शुक्ल जी के महत्तम लेखन के अंतर्गत परिगणनीय हैं।

मृत्यु

सन् 1937 ई. में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद पर रहते हुए ही सन् 1941 ई. में उनकी श्वास के दौरे में हृदय गति बन्द हो जाने से मृत्यु हो गई। साहित्यिक इतिहास लेखक के रूप में उनका स्थान हिन्दी में अत्यन्त गौरवपूर्ण है, निबन्धकार के रूप में वे किसी भी भाषा के लिए गर्व के विषय हो सकते हैं तथा समीक्षक के रूप में तो वे हिन्दी में अप्रतिम हैं।

साभार - सरस्वती हीरक जयंती अंक से

शुक्ल जी असाधारण वस्तु योजना अथवा ज्ञानातीत दशाओं के चित्रण के पक्षपाती भी इसीलिए नहीं थे कि उनसे प्रेषणीयता में बाधा पहुँचती है। इस सिद्धान्त के स्वीकरण के फलस्वरूप साधारणीकरण के सम्बन्ध में कुछ नयी व्याख्या देते हुए उन्होंने 'आलम्बनत्व धर्म का साधारणीकरण' माना। यह उनके स्वतंत्र काव्य-चिन्तन तथा अपने अध्ययन (विशेष रूप से तुलसी के अध्ययन) के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष का परिचायक भी है।

कविता क्या है ?

पं.रामचन्द्र शुक्ल

कविता से मुनष्य -भाव की रक्षा होती है। सृष्टि के पदार्थ या व्यापार-विशेष को कविता इस तरह व्यक्त करती है मानो वे पदार्थ या व्यापार-विशेष नेत्रों के सामने नाचते लगते हैं। वे मूर्तिमान दिखाई देने लगते हैं। उनकी उत्तमता का विवेचन करने में बुद्धि से काम लेने की जरूरत ही नहीं पड़ती। कविता की प्रेरणा से मनोवेगों के प्रवाह जोर से बहने लगते है। तात्पर्य यह कि कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का एक उत्तम साधन है। यदि क्रोध,करूणा,दया,प्रेम आदि मनोभाव मनुष्य के अन्तःकरण से निकल जायँ तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। कविता हमारे मनोभवों की उच्छ्वसित करके हमारे जीवन में एक नया जीव डाल देती है; हम सृष्टि के सौन्दर्य को देख कर मोहित होने लगते है;कोई अनुचित या निष्ठर काम हमें असगह्म होने लगता है। हमें जान पड़ता है कि हमारा जीवन कई गुना अधिक होकर समस्त संसार में व्याप्त हो गया है।

कार्य्य में प्रवृत्ति

कविता की प्रेरणा से कार्य में बढ़ जाती है। केवल विवेचना के बल से हम किसी कार्य में बहुत कम प्रवृत होते है।केवल इस बात का जानकर ही हम किसी काम के करने या न करने के लिए प्रायःतैयार नहीं होते कि वह काम अच्छा है या बुरा ,लाभदायक है या हानि-कारक। जब उसकी या उसके परिणाम की कोई ऐसी बात हमारे सामने उपस्थित हो जाती है जो हमें आह्लाद,क्रोध और करूणा आदि से विचलित कर देती है तभी हम उस काम को करने या न करने के लिए प्रस्तुत होते है। केवल बुद्धि हमें काम करने के लिए उत्तेजित नहीं करती। काम करने के लिए मन ही हमको उत्साहित करता है। अतः कार्य्य -प्रवृत्ति के लिए मन में वेग का आना आवश्यक है। यदि किसी से कहा जाय कि अमूक देश तुम्हारा इतना रुपया प्रति वर्ष उठा ले जाता है,इसीसे तुम्हारे यहाँ अकाल और दारिद्र्य बना रहता है, तो सम्भव है कि उस पर कुछ प्रभाव न पड़े। पर यदि दारिद्र्य और अकाल का भीषण दृश्य दिखाया जाय, पेट की ज्वाला से जरे हुए प्राणियों के अस्थिपञ्जर सामने पेश किये जायँ, और भूख से तड़पते हुए बालक के पास बैठी हुई माता का आर्त्तस्वर सुनाया जाय तो वह मनुष्य क्रोध और करुणा से विह्वल हो उठेगा और इन बातों को दूर करने का यदि उपाय नहीं तो संकल्प अवश्य करेगा।

इ इन्ही मनोवेगों का नाम अलंकारशास्त्र में रस रक्खा गया है। पहले प्रकार की बात कहना राजनीतिज्ञ का काम है और पिछले प्रकार का दृश्य दिखाना कवि का कर्त्तव्य है। मानव-ह्रदय पर दोनों में से किसका अधिकार अधिक हो सकता है,य बतलाने की आवश्यकता नहीं।

मनोरंजन और स्वभाव -संशोधन

कविता के द्वारा हम संसार के सुख,दुःख,आनन्द और क्लेश आदि यथार्थ रूप से अनुभव कर सकते हैं।किसी लोभी और कंजूस दुकानदार को देखिए जिसने लोभ के वशीभूत होकर क्रोध,दया,भक्ति आत्माभिमान आदि मनोविकारों को देबा दिया और संसार के सब सुखों से मुँह मोड़ लिया है। अथवा किसी माहक्रूर राजकर्मचारी के पास जाइए, जिसका ह्रदय पत्थर के समान जड़ और कठोर हो गया ,जिसे दूसरे के दुःख और क्लेश क अनुभव स्वप्न में भी नहीं होता। ऐसा करने से आप के मन में यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि क्या इनकी भी कोई दवा है और संसार के सब सुखों से मुँह मोड़ लिया है। अथवा किसी महाक्रूर राजकर्मचारी के पास जाइए जिसका ह्रदय पत्थर के समान जड़ और कठोर हो गया है, जिसे दूसरे के दुःख और क्लेश का अनुभव स्वप्न में भी नहीं होता। ऐसा करने से आप के मन में यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि क्या इनकी भी कोई दवा है। ऐसे ह्रदयों को द्रवीभूत करके उन्हें अपने स्वाभाविक धर्म पर लाने का सामर्थ्य काव्य ही में है कविता ही उस दुकानदार की प्रवृत्ति भौतिक और आध्यात्मिक सृष्टि के सौन्दर्य की ओर ले जायेगी;

पं रामचंद्र शुक्ल की शिशिर-पथिक

(एक पथिक स्वदेश को लौट रहा है। इसने थोड़ी ही उम्र में सेना के अफसर,एक मेजर के कहने में आकर अपना देश छोड़ा; घर में किसी से कहा भी नही। तब से निरंतर अङ्गरेंजी सेना के साथ-साथ वह एक देश से दूसरे देश में भ्रमण करता रहा। उसकी नवागता वधू बहुत दिनों तब उसके आसरे में रही; अन्त में निराश होकर अपने पिता के घर आकर वह रहने लगी। वहाँ पर उसने अपने वृद्ध पिता की सेवा तथा पथिकों के सत्कार का व्रत लिया। दैव-संयोग से आज स्वयं उसका पति ही पथिक के रूप में उसके सामने आकर उपस्थित हुआ है।)

(१)
विकल,पीड़ित पीय पयान ते
चहुँ रहयों नलिनी-दल घेरि जो,
भुजन भेंटि जिन्हें अनुराग सों,
गमन-उद्यत भानु लखात हैं।

(२)
तजि तुरन्त चले, सुख फेरि के,
शिशिर -शीत -सशंकित जीव हो ;
विहग आरत वैन पुकारते
रहि गये, पर ताहि सुनी नहीं।

(३)
तनि गये सित ओस -वितान हूँ,
अनिल झार बहार धरा परी,
लुकन लोग लगे घर बीच हैं
विवर भीतर कीट पतङ्ग से।

(४)
युग भुजा उर बीच समेटि कै
लखहु आवत गैयन फेरि ये
कँपत कम्बल -बीच अहीर हू
भरमि भूलि गई सब तान है।

(५)
तम भयंकर कारिख फेरि कै
प्रकृति दृश्य कियो घुँघलो सबै;
भनि गये अब शीत-प्रताप ते
निपट निर्जन घाटऽरु बाट हू।

(६)
पर चलो यह आवत है, लखो,
विकट कौन हठी हठ ठानि कै ?
चुप रहैं, तब लौं जब लौं कोऊ
सुजन पुछनहार मिलै नहीं।

(७)
शिथिल गात,महागीत मन्द है
चहुँ निहारत धाम विराम को ;
उठत धूम लख्यौ कछु पै,
करत श्वान जहाँ रव घोर है।

(८)
कँपत आइ भयो छिन में खड़ी
युग कपाट लगे इक द्वार पै;
सुनि पर्‌यो "तुम कौन!" कह्यौ तवै,
"पथिक दीन दया इक चाहती"।

(९)
खुलि गये झट द्वार घड़ाक से
धुनि परी मधुरी यह कान में,
"निकसि आइ बसौ यहि गेह में
पथिक वेगि सकोच बिहाइ के।"

(१०)
पग धरयौ तब भीतर भौन के
अतिथि आवन आयसु पाइ कै,
कठिन -शीतल-ताप -विघातिनी
अनल दीर्घ -शिखा जहँ फेंकती।

(११)
चपल दीठि चहुँ दिसि जाइ के
पथिक की पहुँची इक कोन में;
वय-पराजित जीवन-जंग में
दिन गिनै नर एक परो जहाँ।

(१२)
सिर-समीप सुता मन मारि कै
पितहिं सेवति सील सनेह सों
तहँ खड़ी नत गात कृशाङ्गिनी
लसति वारि-विहीन मृणाल सी।

(१३)
लखि फिरी दिसि आवनहार के
विमल आसन इंगित सों दयो;
अतिथि बैठि असीम दयो तबै
"फलवती सिंगरी तुव आस हो"।

(१४)
मृदु हँसी, करूणा-रस -रंगिनी
तरूनि आनन ऊपर धारि के
कहित "हाय पथी ! सुनु बावरे
न तरू नीरस में फल लागई।

(१५)
"गति लखी विधि की जब वाम मैं
जगत के सुख सों मुख मोरिकै,
पितृ-निदेश निवाहन,औ सदा
अतिथि-सेवन को व्रत मैं लयो।

(१६)
"अब कहो निज नाम, चले कहां ?
कहहु आवत हौ कित तें, इतै ?
विचलि कै चित के किहि वेग सों
पग धरयौ पथ तीर अधीर ह्वै ?

(१७)
"अखिल -आस-अमी रस सींचि के
सतत राखति जो तन-बेलि हीं,
पथिक ! बैठि अरे तुव बाट को
युवति जोवति है कतहूँ कोऊ ?

(१८)
"नयन कोउ निरन्तर धावहीं
तुमहिं हेरन को पथ बीच में ?
श्रवण -बाट कोऊ रहते खुले
कहुँ ,अरे,तुव आहट लेन को ?

(१९)
"कहु कहुँ तोहिं आवत जानि कै,
निकटता तुव प्रेम-प्रदायिनी
प्रथम पावन कारण होत है
चरन -लोचन-बीच बदाबदी ?

(२०)
"कहि दया, भ्रम जो सुख देत है
शुमन-मञ्जुल -जाल बिछाइ कै
कठिन ,काल,निरंकुश निर्हयी
छिनहिँ छीनत ताहि निवारि कै ?"

(२१)
दबि गयो उन वैनानि-भार सों
पथिक दीन, मलीन,थको भयो;
अचल मूर्ति बन्यौ,पल एक लौं
सब क्रिया तन की मन की रूकी।

(२२)
भदन पौरूष -हीन विलोकि के
नयन नीरन उत्तर दै दयो–
तव यथार्थ सबै अनुमान है
अति अलौकिक देवि दयामयी !"

(२३)
अचल नैननि सो सुनिहारते
पथिक को अपनी दिसि देखि के,
इमि लगी कहने फिरि कामिनी
अति पवित्र दया-व्रत -धारिणी।

(२४)
"कुशलता न अहै यहि में कछू ,
अरू न बिस्मय की कछु बात है;
दिवस □ जो दुख की दिसि खेवहि
गति लखैं मग में उलटी सबै।"

(२५)
उभय मौन रहे कछु काल लौ;
पथिक ऊपर दीठि उठाइ कै
इक उसास भरी गहरी जबै
यह कढ़ी मूख ते वचनावली–

(२६)
"अवनि-ऊपर देश-विदेश में
दिवस घूमत ही सिगरे गये;
मिसिर,काबुल,चीन,हिरात की
चरण धूरि रही लिपटाइ है।।

(२७)
पर -दशा-दिशि-मानस-योगिनी
लखि परी इकली भुव बीच तू ।
यह विशेष विचारि सुनवाहूँ
सुतनू ! मो तनु पै जु व्यथा परी।

(२८)
"मन परै दुख की जब वा धरी
पलटि जीवन जो जग में दयो
चतुर "मेजर" के वश □, अहो
जब कियो अपने सुख-नाश मैं।

(२९)
"हित -सनेह -सने मृदु बोल सों
जब लियो इन कानन फेरि मैं।
स्वजन और स्वदेश -स्वरूप को
करि दयो इन आँखिन ओट हा !

(३०)
अब परैं सुनि वाक्य हमें
"धरहु, मारहु , सीस उतारहु'
दिवस रैन रहै सिर पै खरी
अति कराल छुरी अफगान की।

(३१)
"पथिक हो, यह आस हिये धरे,
मम वियोगिनि भामिन को अजौ
अपर-लोक-पयान प्रयास ते
मम -समागम-संशय रोकि है।

(३२)
"कहुँ यहीं इक मन्मथ गांव है
जहँ घनी बसती विधु-वंश की
तहँ रहे इक विक्रमसिंह जो
सुवन तासु यही रनवीर है।"

(३३)
कहत ही इन बैनन के तहाँ
मचि गयो कछु औरहि रंग ही;
वदन अञ्चल -बीच छिपावती
वह परी गिरि भूतल भामिनी

(३४)
असम साहस वृद्ध कियो तवै,
उठि धर्‌यो महि में पग खाट तें;
"पुनि कहो" कहि बारहि बार ही
पथिक को फिरि फेरि निहारई।

(३५)
आशा त्यागी बहु दिनन की नेकु ही में पुरावै
लीला ऐसी जगत प्रभु की, भेद को कौन पावै?
देखो,नारी सुकृत-फल को बीच ही माँहि पायो;
भूलो प्यारो, निज-प्रियतमा-पास आयी सुहायो।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की एक चर्चित कहानी

ग्यारह वर्ष का समय

दिन भर बैठे-बैठे मेरे सिर में पीड़ा उत्पन्न हुई; मैं अपने स्थान से उठा और अपने एक एकान्तवासी मित्र के यहाँ मैंने जाना विचारा। जाकर मैंने देखा तो वे ध्यानमग्न सिर नीचा किये कुछ सोच रहे थे। मुझे यह देखकर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि ,यह कोई नई बात न थी। उन्हें थोड़े ही दिन पूरब से इस देश आये हुआ है। नगर में उनसे मेरे सिवाय और किसी से विशेष जान-पहिचान नहीं है। और न वह विशेषतः किसी से मिलते-जुलते ही है। केवल मुझसे,मेरे भाग्य से,वे मित्र भाव रखते है। उदास तो वे हर समय रहा करते हैं।कई बेर उनसे मैंने इस उदासीनता का कारण पूछा भी;किन्तु मैंने देखा कि उसके प्रगट करने में उन्हें एक प्रकार का दु:ख-सा होता है; इसी कारण मैं विशेष पूछ-ताछ नहीं करता।

मैंने पास जाकर कहा- ''मित्र ! आज तुम बहुत उदास जान पड़ते हो। चलो थोड़ी दूर घूम आवें।चित्त बहल जायगा।

वे तुरन्त खड़े हो गए और कहा''चलो मित्र मेरा भी यही जी चाहता है।मैं तो तुम्हारें यहां जाने वाला था।''

हम दोनो उठे ओर नगर से पूर्व की ओर का मार्ग लिया। मार्ग के दोनों ओर कृषिसम्पन्न भूमि की शोभा का अनुभव करते और हरियाली के विस्तृत राज्य का अवलोकन करते हम लोग चले। दिन का अधिकांश अभी शेष था, इससे चित्त को स्थिरता थी। पावस की जरावस्था थी इससे ऊपर से भी किसी प्रकार के अत्याचार की संभावना न थी। प्रस्तुत ऋतु की प्रशंसा भी हम दोनों बीच-बीच में करते जाते थे।

अहा! ऋतुओं में उदारता का अभिमान यहीं कर सकता है। दीन कृषकों को अन्नदान और सूर्यातप-तप्त पृथिवी को वस्त्रदान देकर यश का भागी यही होता है इसे तो कवियों की ''कौंसिल'' से ''रायबहादुर'' की उपाधि मिलनी चाहिए। यद्यपि पावस की युवावस्था का समय नहीं है; किन्तु उसके यश की ध्वजा फहरा रही है। स्थान -स्थान पर प्रसन्न -सलिल-पूर्ण ताल अद्यापि उसकी पूर्व उदारता का परिचय दे रहे है।

एतादृश भावों की उलझन में पड़कर हम लोगों का ध्यान मार्ग की शुद्धता की ओर न रहा।हम लोग नगर से बहुत दूर निकल गए।देखा तो शनैःशनैःभूमि में परिवर्तन लक्षित होने लगा; अरूणता-मिश्रित पहाड़ी रेतीले भूमि,जंगली बैर-मकोय की छोटी-छोटी कण्टकमय झाड़ियां, दृष्टि के अन्तर्गत होने लगी। अब हम लोगों को जान पड़ा कि हम दक्षिण की ओर झूके जा रहे है।संध्या भी हो चली।दिवाकर की डूबती हुई किरणों की अरूण आभा झाड़ियों पर पड़ने लगीं इधर प्राची की ओर दृष्टि गई; देखा तो चन्द्रदेव पहिले ही से सिहासनारूढ़ होकर एक पहाड़ी के पीछे से झांक रहे थे।

अब हम लोग कह सकते कि किस स्थान पर है।एक पगडण्डी के आश्रय अब तक हम लोग चल रहे थे, जिस पर उगी हुई घास इस बात की शपथ खा के साक्षी दे रही थी कि वर्षो से मनुष्यों के चरण इस ओर नहीं पड़े हैं कुछ दूर चलकर यह मार्ग भी तृण सागर में लुप्त हो गया। ''इस समय क्या कर्तव्य है?'' चित्त इसी के उत्तर की प्रतिक्षा मे लगा। अन्त में यह विचार स्थित हुआ कि किसी किसी खुले स्थान से चारों ओर देखकर यह शान प्राप्त हो सकता हैं कि हम लोग अमुक स्थान पर है।

देवात् सम्मुख ही एक ऊँची पहाड़ी देख पड़ी,उसी को इस कार्य के उपयुक्त स्थान हम लोगों ने विचारा। ज्यों-त्यों करके पहाड़ी क शिखर तक हम लोग गए। ऊपर आते ही भगवती जहु नन्दिनी के दर्शन हुए । नेत्र तो सफल हुए। इतने में चार -हासिनी चन्द्रिका भी अट्टहास करके खिल पड़ी। उत्तर -पूर्व की ओर दृष्टि गई। विचित्र दृश्य सम्मुख उपस्थित हुआ। जाह्नवी के तट से कुछ अन्तर पर नीचे मैदान में, बहुत दूर, गिरे हुए मकानों के ढेर स्वच्छ चन्द्रिका में स्पष्ट रूप से दिखाई दिए।

मैं सहसा चौंक पड़ा और ये शब्द मेरे मुख से निकल पड़े ''क्या वह वही खंडहर है जिसके विषय में यहां अनेक दन्तकथाएं प्रचलित है?'' चारों ओर दृष्टि उठाकर देखने से मुझे पूर्णरूप से निश्चय हो गया कि हो न हो यह वही स्थान है जिसके सम्बन्ध में मैंने बहुत कुछ सुना है। मेरे मित्र मेरी ओर ताकने लगा । जैसे संक्षेप से उस खडहर के विषय में जो कुछ सुना था उनसे कह सुनाया। हम लोगों के चित्त में कौतूहल की उत्पत्ति हुई; उसको निकट से देखने की प्रबल इच्छा से मार्गज्ञान की व्यग्रता को ह्रदय से बहिर्गत कर दिया। उत्तर की ओर उतरना बड़ा दुष्कर प्रतीत हुआ, क्योंकि जंगली वृक्षों और कंटकमय झाड़ियों से पहाड़ी का वह भाग आच्छादित था। पूर्व की ओर से हम लोग सुगमतापूर्वक नीचे उतरे। यहाँ से खंडहर लगभग डेढ़ मील के प्रतीत होता था। हमा लोगों ने पैरों को उसी ओर मोड़ा;मार्ग में घुटनों तक उगी हुई घास पग-पग पर बाधा उपस्थित करने लगी; किन्तु अधिक विलम्ब तक वह कष्ट हम लोगों को भोगना न पड़ा; क्योंकि आगे चलकर फूटे हुए खपरैलों की सिटकियां मिलने लगी;इधर -उदार गिरी हुई दीवारें और मिट्टी के ढूह प्रत्यक्ष होने लगे। हम लोगों ने जाना कि अब यहीं से खंडहर का आरम्भ है। दीवारों की मिट्टी से स्थान क्रमशः ऊँचा होता जाता था। जिस पर से होकर हम लोग निर्भय जा रहे थे। इस निर्भयता के लिए हम लोग चन्द्रमा के प्रकाश के भी अनुगृहीत है। सम्मुख ही एक देवमन्दिर पर दृष्टि जा पड़ी जिसका कुछ भाग तो नष्ट हो गया था,किन्तु शेष प्रस्तरविनिर्मित होने के कारण अब तक क्रूर काल के आक्रमण को सहन करता आया था।मन्दिर का द्वार त्यों का त्यों खड़ा था। किवाड़ सट गये थे। भीतर भगवान भवानीपति बैठे निर्जन कैलाश का आनन्द ले रहे थे, द्वार पर उनका नन्दी भी बैठा था। मैं तो प्रणाम करके वहां से हटा; किन्तु देखा तो हमारे मित्र बड़े ध्यान से खड़े हो उस मन्दिर की ओर देख रहे हैं और मन ही मन कुछ सोच रहे हैं। मैंने मार्ग में भी कई बेर लक्ष्य किया था कि वे कभी-कभी ठिठक जाते और किसी वस्तु को बड़ी स्थिर दृष्टि से देखने लगते । मैं खड़ा हो गया और पुकारकर मैंने कहा, ''कहों मित्र! क्या है? क्या देख रहे हो?''

मेरी बोली सुनते ही वे झट पास दौड़ आए और कहा, ''कुछ नहीं,यों ही मैं मन्दिर देखने लग गया था।'' मैंने फिर तो कुछ न पूछा ,किन्तु अपने मित्र के मुख की ओर देखता जाता था, जिस पर कि विस्मय -युक्त एक अद्भु-भाव लक्षित होता था। इस समय खंडहर के मध्य भाग में हम लोग खड़े थे। मेरा ह्रदय इस स्थान को इस अवस्था मे देख विर्दीण होने लगा। प्रत्येक वस्तु से उदासी बरस रही थी; इस संसार की अनित्यता की सूचना मिल रही थी। इस करूणोत्पादक दृश्य का प्रभाव मेरे ह्रदय पर किस सीमा तक हुआ, शब्दों द्वारा अनुभव करना असम्भव है।

कहीं सड़े हुए किवाड़ भूमि पर पड़े प्रचण्ड काल को साष्टांग दण्डवत कर रहे है।जिन घरों में किसी अपरिचित की परछाई पड़ने से कुल की मर्यादा भंग होती थी;वे भीतर से बाहर तक खुले पड़े है।रंग -बिरंगी चूड़ियों के टुकड़े इधन-उधर पड़े काल की महिमा गा रहे हैं। मैने इनमें से एक को हाथ में उठाया,उठाते ही यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि ''वे कोमल हाथ कहाँ है जो इन्हें धारण करते थे?''

हा! यही स्थान किसी समय नर-नारियों के आमोदद-प्रमोद से पूर्ण रहा होगा और बालकों के कल्लोल की ध्वनि चारो ओर से आती रही होगी।वही आज कराल काल के कठोर दांतों के तले पिसकर चकनाचूर हो गया है। तृणों से आच्छादित गिरी हुई दीवारें ,मिट्टी और ईटों के ढूह, टूटे-फूटे चौकठे और किवाड़ इधर-उधर पड़े एक स्वर से मानों पुकार के कह रहे थे- ''दिनन को फेर होत,मेरू होत माटी को''; प्रत्येक पार्श्व से मानों यही ध्वनि आ रही थी। मेरे ह्रदय में करूणा का एक समुद्र उमड़ा जिसमें मेरे विचार सब मग्न होने लगे।

मैं एक स्वच्छ शिला पर ,जिसका कुछ भाग तो पृथ्वी तल में धंसा था, और शेषांक बाहर था, बैठ गया। मेरे मित्र भी आकर मेरे पास बैठे। मैं तो बैठे-बैठे काल चक्र की गति पर विचार करने लगा ;मेरे मित्र भी किसी विचार ही में डूबे थे; किन्तु में नहीं कह सकता कि वह क्या था। यह सुन्दर स्थानइस शोचनीय और पतित दशा को क्यों कर प्राप्त हुआ, मेरे चित्त में तो यही प्रश्न बार-बार उठने लगा; किन्तु उसका सन्तोषदायक उत्तर प्रदान करने वाला वहां कौन था? अनुमान ने यथासाध्य प्रयत्न किया, परन्तु कुछ फल न हुआ।माथा घूमने लगा।न जाने कितने और किस-किस प्रकार के विचार मेरे मस्तिष्क से होकर दौड़ गए।

हम लोग अधिक विलम्ब तक इस अवस्था में न रहने पाए। यह क्या ? मधूसुदन! यह कौन -सा दृश्य है?जो कुछ देखा उससे अवाक रह गया! कुछ दूर पर एक श्वेत वस्तु इसी खंडहर की ओर आती देख पड़ी! मुझे रोमांच हो आया; शरीर कांपने लगा। मने अपने मित्र को उस ओर आकर्षित किया और उंगली उठा के दिखाया । परन्तु कही कुछ न देख पड़ा ;मैं स्थापित मूर्ति की भांति बैंठ रहा।पुनः वही दृश्य !!अबकी बार ज्योत्स्नालोक मं स्पष्टरूप से हम लोगों ने देखा कि एक श्वेत परिच्छदधारिणी स्त्री एक जल का पात्र लिए खंडहर के एक पार्श्व से होकर दूसरी ओर वेग से निकल गई और उन्हीं खंडहरों के बीच फिर न जाने कहां अन्तर्धान हो गई। इस अदृष्ट पूर्व व्यापार को देख मेरे मस्तक में पसीना आ गया और कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होने लगे। विधाता! तेरी सृष्टिमं न जाने कितनी अद्भुत-अद्भुत वस्तु मनुष्य की सूक्ष्म विचार दृष्टि से वंचित पड़ी है। यद्यपि मैंने इस स्थान-विशेष के सम्बन्ध में अनेक भयानक वार्ताएं सुन रक्खी थी, किन्तु मेरे ह्रदय पर भय का विशेष संचार न हुआ। हम लोगों को प्रेतों पर भी इतना दृढ़ विश्वास न था; नहीं तो हम दोनों का एक क्षण भी उस स्थान पर ठहरना दुष्कर हो जाता। रात्रि भी उस स्थान पर जाती थी। हम दोनों को अब यह चिन्ता हुई कि यह स्त्री कौन है? इसका उचित परिशोध अवश्य लगाना चाहिए।

हम दोनों अपने स्थान से उठे,और जिस ओर यह स्त्री जाती हुई देख पड़ी थी उसी ओर चले।अपने चारों ओर प्रत्येक स्थान को भली प्रकार देखते,हम लोग गिरते हुए मकानों के भीतर जा जा के शृगालों के स्वच्छन्द बिहार में बाधा डालने लगे। अभी तक तो कुछ ज्ञान न हुआ। यह बात तो हम लोगों के मन में निश्चय हो गई थी कि हो न हो वह स्त्री खंडहर के किसी गुप्त भाग मे गई है। गिरी हुई दीवारों की मिट्टी और ईटों के ढेर से इस समय हम लोग परिवृत्त थे; बाह्म जगत् की कोई वस्तु दृष्टि के अन्तर्गत न थी। हम लोगों को जान पड़ता था कि किसी दूसरे संसार में खड़े है। वास्तव में खंडहर के एक भयानक भाग में इस समय हम लोग खड़े थे। सामने एक बड़ी ईटों की दीवार देख पड़ी जो औरों की अपेक्षा अच्छी दशा में थी। इसमें एक खुला हुआ द्वार था। इसी द्वार से हम दोनों ने इसमें प्रवेश किया। भीतर एक विस्तृत आंगन था जिसमें बेर और बबेल के पेड़ स्वच्छन्दतापूर्वक खड़े उस स्थान को मनुष्य -जाति -सम्बन्ध से मुक्त सूचित करते थे।इसमें पैर धरते ही मेरे मित्र की दशा कुछ और हो गई और वे चट बोल उठे ''मित्र! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जैसे मैंने इस स्थान को और कभी देखा हो, यही नहीं कह सकता कब । प्रत्येक वस्तु यहां की पूर्व परिचित -सी जान पड़ती है।''मैं अपने मित्र की ओर ताकने लगा। उन्होंने आगे कुछ न कहा। मेरा चित इस स्थान के अनुसन्धान करने को मुझे बाध्य करने लगा। इधर-उधर देखा तो एक ओर मिट्टी पड़ते -पड़ते दीवार की ऊँचाई के अर्द्धभाग तक वह पहुँच गई थी।इस पर से होकर हम दोनों दीवार पर चढ़ गए। दीवार के नीचे दूसरे किनारे में चतुद्विक -वष्टित एक कोठरी दिखाई दी; मैं इसमें उतरने का यत्न करने लगां बड़ी सावधानी से एक उभड़ी हुई ईट पर पैर रखकर हम दोनों नीचे उतर गए। यह कोठरी ऊपर से बिल्कुल खुली थी, इसलिए चन्द्रमा का प्रकाश इसमें बेरोक-टोक आ रहा था। कोठरी की दाहिनी ओर एक द्वार दिखाई दिया, जिसमें एक जीर्ण किवाड़ लगा हुआ था। हम लोगों ने निकट जाकर किवाड़ों को पीछे की ओर से ढकेला तो जान पड़ा कि वे भीतर से बन्द है।

मेरे तो पैर काँपने लगें पुनः साहस को धारण कर हम लोगों ने किवाड़ के छोटे-छोटे रन्ध्रों से झांका तो एक प्रशस्त कोठरी देख पड़ी। एक कोने में मन्द -मन्द प्रदीप जल रहा था जिसका प्रकाश द्वार तक पहुँचता था। यदि प्रदीप उसमें न होता तो अन्धकार के अतिरिक्त हमलोग और कुछ न देख पाते।

हमलोग कुछ काल तक स्थिर दृष्टि से उसी ओर देखते रहे। इतने में एक स्त्री आकृति देख पड़ी ,जो हाथ में छोटे पात्र लिए उस कोठरी के प्रकाशित भाग में आई! 'अब तो किसी प्रकार का सन्देह न रहा। एक बेर इच्छा हुई कि किवाड़ खटखटायें; किन्तु कई बातों का विचार करके हमलोग ठहर गए। जिस प्रकार से हम लोग कोठरी में आए थे, धीरे-धीरे उसी प्रकार निःशब्द दीवार पर से होकर फिर आँगन में आए। मेरे मित्र ने कहा-''इसका शोध अवश्य लगाओं कि यह स्त्री कौन है।'' अन्त में हम दोनों आड़ में ,इस आशा से कि कदाचित् वह फिर बाहर निकले, बैठ रहे। पौन घंटे के लगभग हमलोग इसी प्रकार बैठे रहे। इतने में वही श्वेतवसनधारिणी स्त्री आंगन में सहसा आकर खड़ी हो गई हम लोगों को यह देखने का समय न मिला कि वह किस ओर से आई।

उसका अपूर्व सौन्दर्य देखकर हमलोग स्तम्भित व चकित रह गए। चन्द्रिका मं उसके सर्वांग की सुन्दरता स्पष्ट जान पड़ती थी। गौर वर्ण, शरीर किंचित् क्षीण और आभूषणों से सर्वथा रहित; मुख उसका यद्यपि उसपर उदासीनता और शोक का स्थायी निवास लक्षित होता था।एक आलौकिक प्रशान्त कान्ति से देदीप्यमान हो रहा था। सौम्यता उसके अंग-अंग से प्रदर्शित होती थी। वह साक्षात् देवी जान पड़ती थी।

कुछ काल तक किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर स्तब्ध लोचनों से उसी ओर हमलोग देखते रहे; अन्त में हमने अपने को सम्भाला और इसी अवसर को अपने कार्योपयुक्त विचारा। हमलोग अपने स्थान पर से उठे और तुरन्त उस देवीरूपाणि के सम्मुख हुए। वह देखते ही वेग से पीछ हटी।मेरे मित्र ने गिड़गिड़ा के कहा, ''देवी ! ढिठाई क्षमा करो। मेरे भ्रमों को निवारण करो।''वह स्त्री क्षण भर तक चुप रही, फिर स्निग्ध और गम्भीर स्वर से बोली, ''तुम कौन हो और क्यों मुझे व्यर्थ कष्ट देते हो?''

इसका उत्तर ही क्या क्या था? मेरे मित्र ने फिर विनीत भाव से कहा, ''देवि! मुझे बड़ा कौतुहल है-दया करके यहाँ का सब रहस्य कहो।''

इस पर उसने उदास स्वर से कहा, ''तुम हमाराउ परिचय लेके क्या करोगे?इतना जान लो कि मेरे समान अभागिनी इस समय इस पृथ्वी मण्डल में काई नहीं है।''

मेरे मित्र से न रहा गया; हाथ जोड़कर उन्होंने फिर निवेदन किया , ''देवि! अपने वृत्तान्त से मुझे परिचित करो। इसी हेतु हमलोगों ने इतना साहस किया है। मैं भी तुम्हारे ही समान दुखिया हूँ। मेरा इस संसार मे कोई नहीं है।'' मैं अपने मित्र का भाव देखकर चकित रह गया।

स्त्री ने करूणस्वर से कहा, ''तुम मेरे नेत्रों के सम्मुख भूला-भूलाया मेरा दुख फिर उपस्थित करने का आग्रह कर रहे हो। अच्छा बैठो।

मेरे मित्र निकट के एक पत्थर पर बैंठ गये। मैं भी उन्हीं के पास जा बैठा । कुछ काल तक सब लो चुप रहे, अन्त में वह स्त्री बोली,

''इसके प्रथम कि मैं अपने वृत्तान्त से तुम्हें परिचित करूं, तुम्हें शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम्हारे सिवाय यह रहस्य संसार में और किसी के कानों तक न पहुँचे,नहीं तो मेरा इस स्थान पर रहना दुष्करहो जायगा और आत्महत्या ही मेरे लिए एक मात्र उपाय शेष रह जायगा?''

हमलोगों के नेत्र गीले हो आए। मेरे मित्र ने कहा, ''देवि ! मुझसे तुम किसी प्रकार का भय न करो; ईश्वर मेरा साक्षी है।''

स्त्री ने तब इस प्रकार कहना आरम्भ किया-

''यह खंडहर जो तुम देखते हो, आज से १०वर्ष पूर्व इक सुन्दर ग्राम था। अधिकांश ब्राह्मण क्षत्रियों की इसमें बस्ती थी। यह घर जिसमें हमलोग बैठे है,चन्द्रशेखर मिश्र नामी एक प्रतिष्ठित और कुलीन ब्राह्मण का निवास स्थान था। घर में उनकी स्त्री और एक पुत्र था, इस पुत्र के सिवाय उन्हें और कोई सन्तान न थी। आज ११वर्ष हुए कि मेरा विवाह इसी चन्दशेखर मिश्र के पुत्र के साथ हुआ था।''

इतना सुनते ही मेरे मित्र सहसा चौंक पड़े। ''हे परमेश्वर यह सब स्वप्न है या प्रत्यक्ष?''ये शब्द उनके मुख से निकले ही थे कि उनकी दशा विचित्र हो गई। उन्होंने अपने को बहुत सम्भाला-और फिर से सम्भलकर बैठे। स्त्री उनका यह भाव देखकर विस्मित हुई और उसने पूछा, ''क्यों,क्या है?''

मेरे मित्र ने विनीत भाव से उत्तर दिया, ''कुछ नहीं यों ही मुझे एक बात का स्मरण आया। कृपा करके आगे कहो।''स्त्री ने फिर आरम्भ किया-

''मेरे पिता का घर काशी में...मुहल्ले में था। विवाह के एक वर्ष पश्चात् ही इस ग्राम में एक भयानक दुर्घटना उपस्थित हुई।यहीं से मेरे दुर्दमनीय दु:ख का जन्म हुआ। सन्ध्या को सब ग्रामीण अपने-अपने कार्य से निश्चिन्त होकर अपने घरों को लौटे।बालकों का कोलाहल बन्द हुआ। निद्रादेवी ने ग्रामीणों के चिन्ता-शून्य ह्रदयों मे अपना डेरा जमाया। आधी रात बीत चुकी थी;

शेष पृष्ठ 5 पर...

पृष्ठ ४ का शेष...

ग्यारह वर्ष का...

कुत्ते भी थोड़ी देर तक भूंककर अन्त में चुप हो रहे। प्रकृति निस्तब्ध हुई; सहसा ग्राम में कोलाहल मचा और धमाके के कई शब्द हुए। लोग आंखे मींजते उठे। चारपाई के नीचे पैर देते हैं तो घुटने भर पानी में खड़े!!कोलाहल सुनकर बच्चे भी जगे। एक दूसरे का नाम ले लेकर लोग चिल्लाने लगे। अपने-अपने घरों में से लोग बाहर निकल कर खड़े हो हुए। भगवती जाहनवी को द्वार पर बहते हुए पाया ! भयानक विपत्ति! कोई उपाय नहीं।जल का वेग क्रमशः अधिक बढने लगा। पैर कठिनता से ठहरते थे। जिधर दृष्टि उठाकर देखा जल ही जल दिखाई दिया। एक एक करके सब सामग्रियां बहने लगी। संयोग-वश एक नाव कुछ दूर पर आती देख पड़ी। आशा! आशा!आशा! नौका आई। लोग टूट पड़े और बलपूर्वक चढ़ने का यत्न करने लगे।मल्लाहों ने भारी विपत्ति सम्मुख देखी, नाव पर अधिक बोझ होने के भय से उन्होंने तुरन्त अपनी नाव बढ़ा दी। बहुत से लोग रह गये। नौका पवनगति से गमन करने लगी। चन्द्रशेखर मिश्र भी नाव प से उतरे और अपने पुत्र का नाम लेके पुकारा। केाई उत्तर न मिला। उन्होंने अपने साथ ही उसे नाव पर चढ़या था। किन्तु भीड़ भाड़ नाव पर अधिक होने के कारण व उनसे पृथक हो गया था;मिश्र जी बहुत घबराए और तुरन्त नाव लेकर लौटे। देखा, बहुत से लोग रह गये थे;उनसे पूछ-ताछ किया। किसी ने कुछ पता न दिया। निराशा भयंकर रूप धारण करके उनके सामने उपस्थित हुई।

सन्ध्या का समय था; मेरे पिता दरवाजे पर बैठे थे। सहसा मिश्र जी घबराए हुए आते देख पड़े। उन्होंने आकर आद्योपान्त पूर्व्वोल्लिखित घटना कह सुनाई,और तुरन्त उन्मत्त की भांति वहां से चल दिये।लोग पुकारते ही रह गये; वे एक क्षण भी वहां न ठहरे।तब से फिर कभी वे दिखाई न दिये।ईश्वर जाने वे कहां गये। मेरे पिता भी दत्तचित होकर अनुसन्धान करने लगे।उन्होंने सुना कि ग्राम के बहुत से लोग नाव पर चढ़ -चढ़कर इधर -उदार भाग गए है।इसलिए उन्हें आशा थी। इस प्रकार ढूंढते-ढूढते कई मास व्यतीत हो गए। अब तक वे समाचार की प्रतीक्षा में थे और उन्हें आशा थी; किन्तु अब उन्हें भी चिन्ता हुई। चन्द्रशेखर मिश्र का भी तब से कहीं कुछ समाचार न मिला।जहां-जहां मिश्रजीका सम्बन्ध था मेरे पिता स्वयं गए;किन्तु चारों ओर से निराश लौटे; किसी का कुछ अनुसन्धान न लगा। एक वर्ष आरम्भ हुआ। पिता बहुत इधर-उधर दौड़े, अन्त में ईश्वर और भाग्य के ऊपर छोड़कर बैठ रहे।तीसरा वर्ष भी व्यतीत हो गया।

मेरी अवस्था उस समय १४वर्ष की हो चुकी थी; अब तक तो मैं निर्बोध बालिका थी। अब क्रमशः मुझे अपनी वास्तविक दशा का ज्ञान होने लगा। मेरा समय भी महर्निश इसी चिन्ता में अब व्यतीत होने लगा। शरीर दिन पर दिन क्षीण होने लगा।मेरे देवतुल्य पिता ने यह बात जानी। वे सदा मेरे दुख भुलाने का यत्न करते रहते थे। अपने पास बैठा कर रामायण आदि की कथा सुनाया करते थे।पिता अब वृद्ध होने लगे; दिवारात्रि की चिन्ता ने उन्हें और भी वृद्ध बना दिया। घर के समस्त कार्य्य-सम्पादन का भार मेरे बड़े भाई के ऊपर पड़ा। उनकी स्त्री का स्वभाव बड़ा क्रूर था; कुछ दिन तक तो किसी प्रकार चला। अन्त में वह मुझसे डाह करने लगी और कष्ट देना प्रारम्भ किया। मैं चुपचाप सब सहन करती थी। धीरे-धीरे आश्वासवाक्य के स्थान पर वह तीक्ष्ण वचनों से मेरे चित्त अधिक दुखाने लगी। यदि कभी मैं अपने भाई से निवेदन करती तो वे भी कुछ न बोलते; आनाकानी कर जाते। और मेरे पिता की ,वृद्धावस्था के कारण, कुछ चल नहीं सकती थी।मेरे दुःख का समझने वाला वहाँ कोई नहीं देख पड़ता था। मेरी माता का पहिले ही परलोकवास हो चुका था। मुझे अपनी दशा पर बड़ा दुःख हुआ। हा! मेरा स्वामी यदि इस समय पर बड़ा होता तो क्या मेरी यही दशा होती? पिता के घर क्या इन्हीं वचनों द्वारा मेरा सत्कार किया जाता।यही सब विचार करके मेरा ह्रदय फटने लगता था। अब क्रमशःमेरा ह्रदय मेघाच्छन्न होने लगा। मुझे संसार शून्य दिखायी देने लगा। एकान्त में बैठकर अपनी अवस्था पर अश्रुवर्षण करती।उसमें भी यह भय लगा रहता कि कहीं भौजाई न पहुंच जाय। एक दिन उसने मुझे इसी अवस्था में पाया तो तुरन्त व्यंग वचनों द्वारा आश्वासन देने लगी।मेरा शोकार्त्त ह्रदय अग्निशिखा की भांति प्रज्वलित हो उठा; किन्तु मौनावलम्बन के सिवाय अन्य उपाय ही क्या था? दिन दिन मुझे यह दुः असह्य होने लगा। एक रात्रि को मैं उठी ,किसी से कुछ न कहा, और सूर्योदय के प्रथम ही अपने पिता का गृह मैंने परित्याग किया।

हमारे कतिपय पाठक हम पर दोषारोपण करेंगे कि ''है! न कभी साक्षात् हुआ, न वार्तालाप हुआ,न लम्बी-लम्बी कोर्टशिप हुई; यह प्रेम कैसा?''महाशय,रूष्ट न हूजिये।इस अदृष्ट प्रेम का धर्म और कर्तव्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ ह्रदय में ही हो सकती है। इसकी जड़ केवल संसार के और प्रकार के प्रचलित प्रेमों से दृढ़तर और अधिक प्रशस्त है। आपको सन्तुष्ट करने को मैं इतना और कहे देता हूँ कि इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधान मंत्री लार्ड बेकन्फील्ड (Earl of Baconsfield) का भी यही मत था।

''मैं अब यह नहीं कह सकती कि उस समय मेरा क्या विचार था? मुझे एक बेर अपने पति के स्थान को देखने की लालसा हुई। दुःख और शोक से मेरी दशा उन्मत्त की सी हो गई थी। संसार में मैंने दृष्टि उठा के देखा तो मुझे ओर कुछ न दिखाई दिया ; केवल चारों ओर दुःख ! सैकड़ों कठिनाइयां झेलकर अन्त में मै इस स्थान तक आ पहुंची।उस समय मेरी अवस्था केवल १६वर्ष की थी। मैंने इस स्थान को उस समय भी प्रायःइसी दशा में पाया था। यहां आने पर मुझे कई चिह्न ऐसे मिले जिनसे मुझे यह निश्चय हो गया कि चन्द्रखेखर मिश्र का घर यही है।इस स्थान को देखकर मेरे आर्त्त ह्रदय पर बड़ा कठोर आघात पहुँचा।''

इतना कहते-कहते ह्रदय के आवेग ने शब्दों को उसके ह्रदय ही में बन्दी कर रक्खा; बाहर प्रगट होने न दिया। क्षणेक पर्यन्त वह चुप रही; सिर नीचा किये भूमि की ओर देखती रही।इधर मेरे मित्र की भांति बैठे वे इकटक ताक रहे थे; इन्द्रिया अपना कार्य उस समय भूल गई थी । स्त्री ने फिर कहना आरम्भ किया-

''इस स्थान को देख मेरा चित्त बहुत दग्ध हुआ।हा! यदि ईश्वर चाहता तो किसी दिन मैं इसी गृह की स्वामिनी होती। आज ईश्वर ने मुझको उसे इस अवस्था दिखलाया। इसके आगे किसका वश है?अनुसन्धान करने पर मुझे दो कोठरियां मिली जो सर्वप्रकार से रक्षित और मनुष्य की दृष्टि के दुर्भेद्य थीं।लगभग चारों ओर मिट्टी पड़ जाने के कारण किसी को उनकी स्थिति का सन्देह नहीं हो सकता था। मुझे बहुत-सी सामग्रियां भी इसमें प्राप्त हुई जो मेरी तुच्छ आवश्यकतानुसार बहुत थीं।मुझे यह निर्जन स्थान अपने पिता के कष्टागार से प्रियतर प्रतीत हुआ। यहीं मेरे पति के बाल्यवस्था के दिन व्यतीत हुए थे। यही स्थान मुझे प्रिय है। यहीं मैं अपने दुःखमय जीवन का शेष भाग उसी करूणाल जगदीश्वर की, जिसने मुझे इस अवस्था में डाला,आराधना में बिताऊंगी।यही विचार मैंने स्थिर किया। ईश्वर को मैंने धन्यवाद दिया जिसने ऐसा उपयुक्त स्थान मेरे लिए ढूंढकर निकाला। कदाचित् तुम पूछोगे कि इस अभागिनी ने अपने लिए इस प्रकार का जीवन क्यों उपयुक्त विचारा? तो उसका उत्तर है कि वह दुष्ट संसार भांति भांति की वासनाओं से पूर्ण है,जो मनुष्य को उसके सत्य पथ पर विचलित कर देती है, दुष्ट और कुमार्गी लोगों के अत्याचार से वंचित रहना भी कठिन कार्य है।''

इतना कह के वह स्त्री ठहर गयी। मेरे मित्र की ओर उसने देखा । वे कुछ मिनट तक काष्ठपुत्तलिका की भांति बैठे रहे; अन्त में एक लम्बी ठंडी सांस भर के उन्होंने कहा ''ईश्वर ! यह स्वप्न है या प्रत्यक्ष?'' स्त्री उनका यह भाव देख-देखकर विस्मित हो रही थी।उसने पूछा, ''क्यों! कैसा चित्त है?'' मेरे मित्र ने अपने को सम्भाला और उत्तर दिया , ''तुम्हारी कथा का प्रभाव मेरे चित्त पर बहुत हुआ है; कृपा करके आगे कहो।'' स्त्री ने कहा, ''मुझे अब कुछ शेष नहीं है। आज पांच वर्ष मुझे इस स्थान पर आए हुए ;संसार में किसी भय से कोई पदार्पण नहीं करता । इससे मुझे अपने को गोपन रखने में विशेष कठिनता नहीं पड़ती । संयोगवश रात्रि में किसी की दृष्टि यदि मुझपर पड़ी भी तो चुड़ैल के भ्रम में मेरे निकट तक आने का किसी को साहस न हुआं वह आज प्रथम ऐसा संयोग उपस्थित हुआ है; तुम्हारे साहस को मैं सराहती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपने शपथ पर दृढ़ रहोगे। संसार में अ मैं प्रगट होना नहीं चाहती; प्रकट होने से मेरी बड़ी दुर्दशा होगी। मैं यहीं अपने पति के स्थान पर अपना जीवन शेष करना चाहती हूँ। इस संसार में मैं अब बहुत दिन न रहूंगी।''

मैंने देखा मेरे मित्र का चित्त भीतर आकुल और संतप्त हो रहा था; ह्रदय का वेग रोककर उन्होंने प्रश्न किया,'क्यों! तुम्हें अपने पति का कुछ स्मरण है?''

स्त्री के नेत्रों से अनर्गल वारिधारा प्रवाहित हुई।बड़ी कठिनतापूर्वक उसने उत्तर दिया , ''मैं उस समय बालिका थी। विवाह के समय मैंने उन्हें देखा था ।वह मूर्ति अद्यापि मेरे ह्रदयमन्दिर में विद्यमान है; प्रचण्ड काल भी उसको वहां से हटाने में असमर्थ है।''

मेरे मित्र कहा , ''देवि! थुमने बहुत कुछ रहस्य प्रगट किया; जो कुछ शेष है उसका वर्णन कर अब मैं इस कथा की पूर्ति करता हूँ।''

स्त्री विस्मयसोत्फुल लोचनों से मेरे मित्र की ओर निहारने लगी। मैं भी आश्चर्य से उन्हीं की ओर देखने लगा। उन्होंने कहना आरम्भ किया-

''इस आख्यायिका में यही ज्ञात होना शेष है कि चन्द्रशेखर मिश्र के पुत्र की क्या दशा हुई। चन्द्रशेखर मिश्र और उनकी पत्नी क्या हुए । सुनो,नाव पर मिश्रजी ने अपने पुत्र को अपने साथ ही बैठाया । नाव पर भीड़ अधिक हो जाने के कारण वह उनसे पृथक हो गया। उन्होंने समझा कि वह नाव ही पर है; कोई चिन्ता नहीं।इधर मनुष्यों की धक्का मुक्की से वह लड़का नाव पर से नीचे जा रहा। ठीक उसी समय मल्लाह ने नाव खोल दी। उसने कई बेर अपने पिता को पुकारा ; किन्तु लोगों के कोहाहल में उन्हें कुछ सुनाई न दिया। नाव चली गई ।बालक वहीं खड़ा रह गया। और लोग किसी प्रकार अपना-अपना प्राण लेके इधर-उधर भागे। नीचे भयानक जलप्रवाह; ऊपर अनन्त आकाश ।लड़के ने एक छप्पर को बहते हुए अपनी ओर का एक बहुत ऊँचा प्रबल झोंका आया। छप्पर लड़के सहित शीघ्र गति से बहने लगा। वह चुपचाप मूर्तिवत् उसी पर बैठा रहा। उसे यह ध्यान नहीं कि इस प्रकार कै दिन तक वह बहता गया। वह भय और दुविधा से संज्ञाहीन हो गया था। संयोगवश एक व्यापारी की नाव जिस पर रूई लदी थी पूरब की ओर जा रही थी। नौका का स्वामी भी बजरे ही पर था। उसकी दृष्टि उस उड़के पर पड़ी। वह उसे नाव पर ले गया। लड़के की अवस्था उस समय मृतप्राय थी। अनेक यत्न के उपरान्त वह होश में लाया गया। उस सज्जन ने लड़के की नाव पर बड़ी सेवा की। नौका बराबर चलती रही; बीच में कहीं न रूकी; कई दिनों के उपरान्त वह कलकत्ते पहुंची।

वह बंगाली सज्जन उस लड़के को अपने घर ले गया और उसे उसने अपने परिवार में सम्मिलित किया । बालक ने अपने माता-पिता के देखने की इच्छा प्रगट की। उसने उसे बहुत समझाया और शीघ्र अनुसन्धान करने का वचन दिया। लड़का चुप हो रहा।

इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गये।क्रमशः वह अपने पास के लोगों में हिल-मिल गया। बंगाली महाशय के एक पुत्र था-दोनों में भ्रातृ-स्नेह स्थापित हो गया। वह सज्जन उस लड़के के भावी हित की चेष्टा में तत्पर हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापित किये हुए एक अंग्रेजी स्कूल में, अपने पुत्र के साथ-साथ उसे भी वह शिक्षा देने लगा। क्रमशः उसे अपने घर का ध्यान कम होने लगा। इसी प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये। उसके चित्त में अब अन्य प्रकार के विचारों ने निवास किया। अब पूर्व परिचित लोगों के ध्यान के लिए उसके मन में कम स्थान शेष रहा। मनुष्य का स्वभाव ही इस प्रकार का है। नौ वर्ष का समय निकल गया। इसी बीच में एक बड़ी चित्ताकर्षक घटना उपस्थित हुई। वंगदेशी सज्जन के उस पुत्र का विवाह हुआ। चन्द्र शेखर का पुत्र भी उस समय वहां उपस्थित था उसने सब देख; दीर्घकाल की निद्रा भंग हुई सहसा उसे ध्यान हो आया ''मेरा भी विवाह हुआ है; अवश्य हुआ है।''उसे अपने विवाह का बारम्बार ध्यान आने लगा। अपनी पाणिग्रहीता भार्या का भी उसे स्मरण हुआ। स्वदेश में लौटने को उसका चित्त आकुल होने लगा। रात्रि इसी चिन्ता में व्यतीत होने लगे।''

हमारे कतिपय पाठक हम पर दोषारोपण करेंगे कि ''है! न कभी साक्षात् हुआ, न वार्तालाप हुआ,न लम्बी-लम्बी कोर्टशिप हुई; यह प्रेम कैसा?''महाशय,रूष्ट न हूजिये।इस अदृष्ट प्रेम का धर्म और कर्तव्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ ह्रदय में ही हो सकती है। इसकी जड़ केवल संसार के और प्रकार के प्रचलित प्रेमों से दृढ़तर और अधिक प्रशस्त है। आपको सन्तुष्ट करने को मैं इतना और कहे देता हूँ कि इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधान मंत्री लार्ड बेकन्फील्ड (Earl of Baconsfield) का भी यही मत था।

''युवक का चित्त अधिक डांवाडोल होने लगा। एक दिन उसने उस देवतुल्य सज्जन से अपने चित्त की अवस्था प्रगट की और बहुत विनय के साथ विदा मांगी।आज्ञा पाकर उसने स्वदेश की ओर यात्रा की। देश में आने पर उसे विदित हुआ कि ग्राम में अब कोई नहीं है। उसने लोगों से अपने पिता-माता के विषय में पूछ-ताछ किया। कुछ लोगों ने कहा कि थोड़े दिन हुए वे दोनों इस नगर में थे; और अब वे तीर्थ-स्थानों में देशाटन कर रहे है।वह अपनी धर्मपत्नी के दर्शनों की अभिलाषा से सीधे काशी गया। बहुत दिनों के पश्चात् तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता से उस से साक्षात् हुआ, जिससे तुम्हारे संसार से सहसा लोप हो जाने की बात ज्ञात हुई। वह निराश होकर संसार में घूमने लगा।''

इतना कहकर मेरे मित्र चुप हो रहे। इधर शेष भाग सुनने का हम लोगों का चित्त ऊब रहा था; आश्चर्य से उन्हीं की ओर हम ताक रहे थे। उन्होंने फिर उस स्त्री की ओर देखकर कहा, ''कदाचित् तुम पूछोगी, कि इस समय अब वह कहां है? वह वही अभागा मनुष्य तुम्हारे सम्मुख बैठा है!''

हम दोनों के शरीर में बिजुली सी दौड़ गई ; वह स्त्री भूमि पर गिरने लगी; मेरे मित्र ने दौड़कर उसको संभाला।वह किसी प्रकार उन्हीं के सहारे बैठी। कुछ क्षण के उपरान्त उसने बहुत धीमे स्वर से मेरे मित्र से कहा, ''अपना हाथ दिखाओं।'' उन्होंने चट अपना हाथ फैला दिया, जिसपर एक काला तिल दिखाई दिया। स्त्री कुछ काल तक उसी की ओर देखती रही; फिर मुख ढांपकर सिर नीचा करके बैंठ रही।लज्जा का प्रवेश हुआ। क्योंकि वह एक हिन्दू रमणी का उसके पति के साथ प्रथम संयोग था।

आज इतने दिनों के उपरान्त मेरे मित्र का गुप्त-रहस्य प्रकाशित हुआ। उस रात्रि को मैं अपने मित्र का खंडहर में अतिथि रहा। सबेरा होते ही हम सब लोग प्रसन्नचित नगर में आये।

नमो दैव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणता स्मताम् ।। (दुर्गासप्तसती)

डॉ.खुशबू राठी

नमो दैव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणता स्मताम् ।।
(दुर्गासप्तसती)

मानव और प्रकृति का अटूट संबंध हैं। मानव ने जब नेत्र खोले तो स्वयं को प्रकृति की गोद में पाया । धर्म, दर्शन, साहित्य एवं कला सभी क्षेत्रों में प्रकृति का अग्रगण्य स्थान हैं। वास्तव में साहित्य तो प्रकृति से ही अभिप्रेरित है। प्रकृति रुपी आंगन में बैठकर ही साहित्यकार अपनी कृति को सजीव बनाते हैं, प्रकृति के सौन्दर्याभाव में काव्य भी निष्प्राण है। काव्य को सजीवता प्रकृति ही प्रदान करती है।

चाँद - सितारे, नक्षत्र, नदी, पहाड़, झरने, संध्या, बारिश आदि सभी प्रकृति ही हैं जो निरंतर साहित्यकारों एवं कवियों के हृदय को काव्य रचना के लिए प्रेरित करते रहते हैं। हर युग में तत्कालीन कवियों ने बड़ी सहजता के साथ प्रकृति का प्रचुर चित्रण किया हैं अपने मनोभावों को प्रकृति के विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है सुख-दुःख, हर्ष-विषाद की झलक प्रकृति में देखी हैं अतः अतिश्योक्ति नहीं है कि-काव्य प्रकृति से अभिप्रेरित है। सभ्यता और संस्कृति का पालन प्रकृति ने ही किया है। आध्यात्म में तो प्रकृति का विशेष महत्तव है वेद-पुराण गिरी कंदराओं में लिखे गये हैं। पवित्र तीर्थ नदी किनारे है काशी, मथुरा प्रयाग, उज्जैन, अयोध्या इस बात के प्रत्यक्ष उदा0 प्रस्तुत करते हैं इन क्षेत्र में बहने वाली
नदियों को माता माना जाता है जिनकी स्तुति परमात्मा स्वयं करते हैं। गंगा के जल की पवित्रता और शुद्धता पूरे विश्व में शोध व अनुसंधान का विषय है।पर्वत एवं वन न केवल ऋषि-मुनियों के आश्रय प्रदाता है वरन् परमात्मा के भी निवास है हिमालय पर शिव साक्षात् विराजित है एवं श्री कृष्ण गोवर्धन को धारण कर गिरधर कहलाए।वनस्पतियों का प्रयोग हमारी पूजन पद्धति में अनादिकाल से प्रचलन
में हैं। वृक्षों में ईश्वरत्व का दर्शन कर उनके पूजन की आवश्यकता को विज्ञान ने भी स्वीकार किया है जिससे सिद्ध होता है कि- हमारा धर्म महज अंधविश्वास नहीं अपितु 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के मानव कल्याण की विचारधारा से ओतप्रोत हैं।

किंतु बदलती प्रकृति, नित परिवर्तित होता मौसम, सर्दी के समय सर्दी न होना, गर्मी के समय अधिक गर्मी होना, वर्षाकाल का आगमन आगे पीछे होना,ओजोन परत में छिद्र होना, मानव स्वास्थ्य में गिरावट आना, जल-प्रदूषण, वायु- प्रदूषण, रासायनिक-प्रदूषण तथा अन्य प्रदूषणों का उत्पन्न होना और फिर सुनामी, भूकंप व आंधियों का आना, ओलावृष्टि,बाढ़ और कोरोना जैसी महामारी सोचने पर विवश करते हैं ऐसा क्यों हो रहा है जब इस पर विचार होता है तो उत्तर आता है कि- समय बदल गया है या यह भी कह सकते हैं कि- परिवर्तन प्रकृति का नियम हैं परंतु प्रकृति में ऐसा बदलाव क्यों आया है जबकि प्रकृति सभी का कल्याण करती हैं फिर ये विनाश क्यों ? क्या इसे रोकने का कोई उपाय है ? अथवा नहीं। इन सभी प्रश्नों पर चिंतन करने से इस तथ्य पर पहुंचते हैं कि - प्रकृति को यदि भोग्या मानेगें तो ये मानव को रोगों का घर बनाकर श्रृष्टि
में हाहाकार मचा देगी वहीं यदि मातृत्व भाव से यदि इसे आपने पोषित किया तो ये मानव को देवत्व प्रदान कर देगी अतः हमें कृतज्ञ भाव से प्रकृति का दोहन करना चाहिए शोषण नहीं क्योंकि असीमित स्वार्थ से किया गया शोषण विकृति उत्पन्न करता है जो अंततः प्रलयकारी होता है। पंच तत्व से निर्मित संसार इनके (मिट्टी, अग्नि, जल, वायु एवं आकाश) निर्मल एवं पवित्र रहने पर ही प्राणीमात्र के लिए फलदायी व सुखदायी होता है। प्रकृति संतुलित रहे तो कृषि, पशुपालन और अन्य कार्यों में कभी बाधा नहीं आती है तथा समाज में धन-धान्य की कमी भी नहीं होगी जैसा रामराज्य में तुलसीदासजी द्वारा वर्णित किया है - 'अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।' अतःप्रकृति के प्रति मातृत्व का भाव उत्पन्न कर उसके संरक्षण हेतु प्रेरित करना है ताकि संसार में सुखमय हो सके क्योंकि जब तक धरती पर पर्वत और हरे-भरे वन रहेगे तब तक हम और हमारी भावी पीढ़ियाँ जीवित और खुशहाल होगी।

'यावत् भूमंडल धते सशैलवन काननम् ।
तावत्तिष्ठति मे दिन्या संतति पुत्रपौत्रकी ।।

प्रकृति को वरदान स्वरूप वृक्ष वनस्पति प्राप्त हुए है जिनका परोपकारी जीवन विकृत क्षति को पूर्ति में बदल देता है, वर्तमान काल, स्तिथि परिवेश की दृष्टि से मानव के लिए पुण्यमयी उत्तम कृति वृक्षारोपण है । इसीलिए वृक्ष की महिमा में नीति श्लोक भी भारतीय सत्य सनातन संस्कृति की विशुद्ध धार्मिक आध्यात्मिक वैज्ञानिक विचारधारा और कृतित्व को प्रकट करता है जो की शाश्वत है।

दशकूपसमा वापी दसवापीसमो ह्रदः । दशहदसमः पुत्रो दशपुत्र समो द्रुमः ।।

दस कूप के बराबर एक बावड़ी है, दस बाबडी के बराबर एक सरोवर है दस सरोवर के समान एक पुत्र है दस पुत्रो के समान एक वृक्ष का महत्व है, जीवन क्योंकि जल के विना नही, संतति वृद्धि पुत्र के बिना नहीं और इन दोनो को जीवन शक्ति देने वाले
वनस्पति वृक्ष ही है।

जैसे किसी रोगी (पर्यावरण) को रोग (प्रदूषण) औषधि और पत्थ्यापथ का वैद्य परामर्श देता है वैसे ही आज वर्तमान समय में अनादिकाल से नित्य प्रवाहित हो रही सत्य सनातन संस्कृति की मर्यादित जीवनशैली जिसमे प्रकृति और उनके उपांगो की आध्यात्मिक धार्मिक तार्किक पूजा पद्धति पथ्यापथ है और औषधि के रूप में वृक्षारोपण (सभी वृक्ष) है।

मानव प्रकृति की अनुपम धरोहर है जिसके कृतित्व में संतुलन, साम्यावस्था परिलक्षित हो।

रतलाम (म.प्र.)

शहर समता - ब्यूरो प्रमुख

देहरादून ब्यूरो - निशा अतुल्य,
सतना ब्यूरो - डॉ ऊषा सक्सेना,
रीवां ब्यूरो - साधना तिवारी,
लखनऊ ब्यूरो - मंजु सक्सेना,
जबलपुर ब्यूरो - शैली सेठ,
लुधियाना ब्यूरो - श्रद्धा शुक्ला,
जौनपुर ब्यूरो - डॉ मधु पाठक,
हैदराबाद ब्यूरो -रीना प्रदीप कुमार,
भिलाई ब्यूरो - संध्या चंदेल,
गोरखपुर ब्यूरो - चित्रा श्रीवास्तव,
दिल्ली ब्यूरो - अफरोज़ अजीज,
तिनसुकिया गोलाघाट ब्यूरो - रंजना बिनानी,
प्रयागराज ब्यूरो - डॉ आकांक्षा पाल,
भीलवाड़ा ब्यूरो - डॉ राजमति पोखरना,
इंदौर ब्यूरो - आशा जाकड़,
शिलांग ब्यूरो - डॉ अनीता पंडा,
बिलासपुर ब्यूरो - स्मृति मिश्रा 'रीति,
रायपुर ब्यूरो - सीमा निगम,
कानपुर ब्यूरो - सीमा वर्णिका,
भोपाल ब्यूरो - दीपमाला तिवारी,
दमोह ब्यूरो- भावना शिवहरे,
मण्डला ब्यूरो - डॉ अर्चना जैन
बनारस ब्यूरो - सुनीता जौहरी,
आरा ब्यूरो - सिम्पल सिंह,
बिजनौर ब्यूरो - ऋतुबाला रस्तोगी,
पठानकोट ब्यूरो - क्षमा लाल गुप्ता,
सप्तरी नेपाल ब्यूरो - करुणा झा,
धम्तरी ब्यूरो - कामिनी कौशिक,
रामपुर ब्यूरो - चंद्रिका कुमार 'चांदनी',,
मुरादाबाद ब्यूरो - अभिव्यक्ति सिन्हा,
कटनी ब्यूरो - मीरा भार्गव,
पटना ब्यूरो - अंजू भारती

शहर समता (हिन्दी साप्ताहिक) के वार्षिक एवं तीन वर्षीय सदस्य बनें।

वार्षिक सदस्यता के लिए -200/- **तीन वर्षीय सदस्यता के लिए -500/-**

कृपया 'शहर समता' के नाम से चेक या आनलाइन भेज सकते है।
IFSC Code- PUNB0100120 A/c.-1001050011592

व्यवस्थापक
शहर समता (हिन्दी साप्ताहिक)
289/238 ए (अनंत भवन) कर्नलगंज ,इलाहाबाद-211002

पीडीफ़ के लिए
shaharsamta.blogspot.com
पर जाएँ ।

संस्थापक
स्व0 कन्हैया लाल, स्व0 साधना श्रीवास्तव

सम्पादक
उमेश चन्द्र श्रीवास्तव
आरएनआई नं0 UPHIN/2001/3996

उप संपादक
डा0 अरूण कुमार मिश्रा
रचना सक्सेना

Mo. 9005239332 Email-shaharsamta@gmail.com

स्वत्वाधिकारी/मुद्रक/प्रकाशक/सम्पादक उमेश चन्द्र श्रीवास्तव द्वारा इण्डियन प्रेस (पलि.) प्रा0लि0, 36 पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित कराकर 289/238ए, (अनन्त भवन) कर्नलगंज, इलाहाबाद से प्रकाशित।

इस अंक के प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी तथा समस्त विवादों का निपटारा इलाहाबाद न्यायालय में ही होगा।